International Journal of Applied Research 2023; 9(11): 160-165

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2023; 9(11): 160-165
www.allresearchjournal.com
Received: 03-09-2023
Accepted: 07-10-2023

मनीष कुमार
स्नातकोत्तर, दर्शनशास्त्र विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
मनीष कुमार
स्नातकोत्तर, दर्शनशास्त्र विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

स्वामी दयानंद सरस्वतीः सामाजिक और धार्मिक दर्शन एक अध्ययन

मनीष कुमार

सारांश

स्वामी दयानंद सरस्वती वेद शास्त्रों के एक महान विद्वान, समाज सुधारक और आर्य समाज के प्रवर्तक के रूप में विश्व प्रसिद्ध हैं। वे इस युग के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा के लिए कानून बनाया और मनुष्यों के लिए शिक्षा के समान अधिकार की क्रांतिकारी घोषणा करके इसे लागू किया।

वह पहले भारतीय हैं जिन्होंने आधुनिक युग में मनुष्य की समानता और सभी के लिए समान अवसर के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। 19वीं शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों के साथ भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में एक नए युग की शुरुआत हुई। इस समय समाज सती प्रथा, जाति व्यवस्था, बाल विवाह, मूर्ति पूजा, अस्पृश्यता आदि बुराइयों से प्रदूषित था। इस समय ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जा रहे प्रचार के कारण लोगों का ध्यान ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हो रहा था और वे हिंदू धर्म के प्रति उदासीन हो रहे थे। इस समय देश में पुनर्जागरण हुआ और विभिन्न सुधारकों ने देश की सामाजिक और धार्मिक स्थिति में कई सुधार किए, जिसके कारण आधुनिक भारत के निर्माण को बढ़ावा मिला। स्वामी जी ने भारत के गौरवशाली अतीत को प्रबुद्ध किया और देशवासियों को अपनी शोषित स्थिति से ऊपर उठकर भविष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। स्वामी दयानंद सरस्वती को किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में समाज सुधारक के रूप में अधिक प्रसिद्धि मिली। समाज सुधार की दिशा में स्वामी दयानंद का पहला मुख्य कार्य अस्पृश्यता का विरोध करना था। स्वामी जी का मानना था कि उचित शिक्षा के अभाव में किसी भी देश का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। स्वामी जी ने युवाओं के चरित्र निर्माण पर जोर दिया और उन्हें सच्ची अवैध निर्भीकता का सबक सिखाया। स्वामी जी अपने सामाजिक विचारों में संपूर्ण मानव जाति के उत्थान पर जोर देते थे, वे वैदिक आश्रम प्रणाली का भी समर्थन करते थे।

स्वामी दयानंद ने देश की एकता के संदर्भ में शिक्षा को महत्वपूर्ण माना और इस तथ्य को प्रस्तुत किया कि देश को एकता के सूत्र में जोड़ने के लिए पूरे देश में हिंदी भाषा का प्रचलन होना चाहिए। स्वामी दयानंद सरस्वती अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में थे। उन्होंने ऐसी शिक्षा प्रणाली को अपनाने पर जोर दिया जो पूरी तरह से राष्ट्रीय हो और जो ऐसे नागरिक पैदा करे जिनमें समाज के प्रति कर्तव्य और जिम्मेदारी की भावना हो। स्वामी दयानंद न केवल एक धार्मिक सुधारक थे, बल्कि उन्होंने भारत के अधीनता की राजनीतिक दुर्दशा को भी गंभीरता से महसूस किया। दयानंद ने सबसे पहले यह आवाज उठाई कि विदेशी शासन को समाप्त करके भारत में स्वशासन स्थापित किया जाना चाहिए। स्वामी दयानंद के अनुसार, सत्य को जानने के लिए वेद ही एकमात्र प्रमाण हैं।

वेदों के अनुसार जो कुछ भी है वह सत्य है और जो कुछ भी वेदों के विरुद्ध है वह असत्य है। उनके अनुसार, धर्म कई नहीं हो सकते क्योंकि भगवान एक हैं, इसलिए धर्म भी एक है।

स्वामी दयानंद एक ऐसे धर्म में विश्वास करते थे जो सार्वभौमिक हो और जिसके सिद्धांतों को सभी मनुष्यों द्वारा सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता हो। स्वामी दयानंद ने धर्म की उदार व्याख्या की और एक ईश्वर पर जोर दिया।

कुटशब्दः शिक्षा, धर्म, समाज सुधार, भगवान, कर्तव्य

प्रस्तावना

19वीं शताब्दी को भारत का पुनर्जागरण काल होने का सम्मान प्राप्त है। इस शताब्दी में भारत में कई संतों, समाज सुधारकों और विचारकों का जन्म हुआ और उन्होंने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी।

इस काल में जब भारतीय समाज में बहुत निराशा थी, जातिवाद, अस्पृश्यता, बाल विवाह जैसी बुरी प्रथाओं की प्रथा हिंदू धर्म को लगातार खोखला कर रही थी, ऐसे में एक महान समाज सुधारक का उदय हुआ। समाज के हर वर्ग के लोगों में नई चेतना और जागृति का सृजन किया। ऐसी महान आत्मा का नाम स्वामी दयानंद सरस्वती है। स्वामी जी ने भारत के गौरवशाली अतीत को प्रबुद्ध किया और देशवासियों को अपनी शोषित स्थिति से ऊपर उठकर भविष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी ने न केवल भारतीय संस्कृति और वेदों की महानता को प्रस्तुत किया, बल्कि हिंदू पुनरुत्थानवाद की आवश्यकता को महसूस करते हुए, उन्होंने देशवासियों को ब्रिटिश शासकों के खतरनाक इरादों से भी परिचित कराया और उन्हें चेतावनी दी कि अगर वे ब्रिटिश शासन के अधीन आते हैं। यदि वे आते हैं तो उनके गौरवशाली इतिहास और संस्कृति का पतन आवश्यक होगा।

स्वामी दयानंद पहले भारतीय थे जिन्होंने आधुनिक युग में मनुष्यों के लिए समान अवसर और समानता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। 19वीं शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों के साथ भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में एक नए युग की शुरुआत हुई। इस समय समाज सती प्रथा, जाति व्यवस्था, बाल विवाह प्रणाली, मूर्ति पूजा और अस्पृश्यता आदि बुराइयों से प्रदूषित था। विभिन्न आडंबरों के कारण धर्म भी संकीर्ण होता जा रहा था। इस समय ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जा रहे प्रचार के कारण लोगों का ध्यान ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हो रहा था और वे हिंदू धर्म के प्रति उदासीन हो रहे थे। इस समय देश में पुनर्जागरण हुआ और विभिन्न सुधारकों ने देश की सामाजिक और धार्मिक स्थिति में कई सुधार किए, जिसके कारण आधुनिक भारत के निर्माण को बढ़ावा मिला।

स्वामी दयानंद के सामाजिक विचार

स्वामी दयानंद सरस्वती को किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में समाज सुधारक के रूप में अधिक प्रसिद्धि मिली। स्वामी जी मनुष्य और पूरे समाज की सेवा में विश्वास रखते थे। उन्होंने कहा कि जब तक भारतीय समाज में बुराइयाँ और अंधविश्वास कायम हैं, तब तक भारत में राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय एकता संभव नहीं है। स्वामी जी ने सामाजिक समस्याओं पर गंभीर विचार प्रस्तुत करते हुए सामाजिक सुधार की योजना प्रस्तुत की। स्वामी दयानंद सरस्वती के सामाजिक विचारों का वर्णन इस प्रकार है –

अस्पृश्यता का विरोध

समाज सुधार की दिशा में स्वामी दयानंद का पहला मुख्य कार्य अस्पृश्यता का विरोध करना था। वे उन शुरुआती विचारकों में से एक थे जिन्होंने समाज में अस्पृश्यता के कलंक के खिलाफ आवाज उठाई थी। वे समाज में ऐसी किसी भी प्रथा के विरोधी थे जो अछूतों को उच्च सामाजिक स्थिति तक पहुंचने से रोकती थी।[1]

स्वामीजी की राय थी कि वेदों में अस्पृश्यता को कोई मान्यता नहीं दी गई है। वे कहते थे कि अगर हमें हिंदू जाति को बचाना है, तो हमें अस्पृश्यता के कलंक को धोना होगा, इसे रोकना होगा। स्वामीजी अस्पृश्यता को एक अमानवीय कार्य मानते थे और इसके खिलाफ काम करना प्रत्येक आर्य समाज का पहला कर्तव्य मानते थे। स्वामी जी ने हिंदू धर्म के ठेकेदारों को अस्पृश्यता के कारण शिक्षा और वेदों के ज्ञान से वंचित करने के लिए भी कड़ी आलोचना की थी।

महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए समर्थन

स्वामी जी ने महसूस किया कि आज हिंदू समाज की महिलाएं प्राचीन काल में जितनी सम्मानजनक स्थिति का आनंद नहीं लेती हैं। 19वीं शताब्दी में महिलाओं की दयनीय स्थिति ने उन्हें प्रभावित किया। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए स्वामीजी ने निम्नलिखित प्रयास शुरू किए।

स्वामी जी ने बाल विवाह के निषेध का समर्थन किया। उनकी राय थी कि शादी के लिए लड़कों और लड़कियों की उम्र तय करना आवश्यक है। एक विवेकपूर्ण जीवन साथी चुनने और सफल और स्वस्थ बच्चे पैदा करने के लिए, उनकी राय थी कि शादी के समय लड़कों की आयु कम से कम 25 वर्ष और लड़कियों की आयु कम से कम 16 वर्ष होनी चाहिए। आर्य समाज ने स्वामी दयानंद सरस्वती के ऐसे सामाजिक सुधारों के विचारों को व्यावहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अजमेर के आर्य समाजजी हर बिलास शारदा के प्रयासों के परिणामस्वरूप, शारदा अधिनियम पारित किया गया जिसने बाल विवाह को कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया। हर बिलास शारदा एक आर्य समाजवादी थे, उनके विचार स्वामी दयानंद के विचारों से प्रेरित थे।

स्वामीजी ने महिलाओं की दयनीय स्थिति के लिए शिक्षा की कमी को जिम्मेदार माना। स्वामी जी ने सोचा कि महिलाएं शिक्षा से वंचित हैं, इसलिए वे अपना विकास नहीं कर सकतीं। जब तक महिलाएं शिक्षित नहीं होतीं, तब तक देश किसी भी तरह से सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता, क्योंकि हम आधे समाज को उनके अधिकारों से दूर रखते हैं।

स्वामी जी ने हिंदू समाज में प्रचलित पर्दा प्रणाली का कड़ा विरोध किया था। वे पर्दा प्रणाली को हिंदू-विरोधी संस्कृति मानते थे। उनका एक विचार था कि जब तक महिलाएं पर्दा की बेड़ियों से मुक्त नहीं होती हैं, तब तक देश में कोई प्रगति की उम्मीद नहीं की जा सकती है।[2]

स्वामी जी ने सती प्रथा को एक क्रूर अमानवीय प्रथा मानते हुए इसका पुरजोर खंडन किया है। उनकी राय थी कि पति की मृत्यु के बाद, महिला को उसके पति की चिता के साथ एक जीवित जिला देना किसी भी तरह से धार्मिक और सामाजिक कार्य के रूप में उचित नहीं हो सकता है।

स्वामी जी ने शास्त्रों और रचना के नियमों के अनुसार युवा विधवाओं के पुनर्विवाह की व्यवस्था बताई। स्वामी जी का मानना था कि जो राष्ट्र महिलाओं का सम्मान नहीं करता है, वह विनाश की ओर बढ़ रहा है

जाति व्यवस्था का विरोध

स्वामी दयानंद के समय में दलितों को जीवन के हर क्षेत्र में अपमान और उत्पीड़न के माहौल में रहना पड़ता था। उन्हें समाज में स्वतंत्र प्राणी या व्यक्तित्व के रूप में मान्यता नहीं दी जाती थी, उन्हें हीन माना जाता था, उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जाती थी, न ही उन्हें वेदों के अध्ययन के योग्य माना जाता था। स्वामीजी ने इसे पंडितों और ब्राह्मणों का पाखंडी जाल कहा। उन्होंने कहा कि जिस तरह भगवान ने सभी प्राकृतिक चीजों को प्रत्येक मनुष्य को समान रूप से प्रदान

किया है, उसी तरह वेद सभी के लिए प्रकट होते हैं। जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाकर स्वामीजी ने निम्न वर्ग या दलित वर्ग के लिए आशा की किरण पेश की। वर्तमान समय में प्रचलित जाति व्यवस्था का वैदिक समाज में कहीं भी उल्लेख नहीं है। स्वामी दयानंद ने मनुष्य में समानता का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा कि कोई भी जन्म से अछूत नहीं है।

मूर्तिपूजा का विरोध

स्वामी जी ने मूर्ति पूजा का कड़ा विरोध किया है, वे मूर्ति पूजा को वेदों के खिलाफ मानते थे। जहाँ दयानंद द्वारा मूर्ति पूजा की जाती है, वहाँ वेदों में कोई प्रामाणिक और तार्किक आधार नहीं है। स्वामी जी का विचार था कि मूर्ति अपने आकार, निर्माण तत्व, अलंकरण आदि की दृष्टि से भौतिक रूप की है। और आध्यात्मिक एकाग्रता प्राप्त करना असंभव है। मूर्ति में भगवान के जीवन की अवधारणा मूर्खतापूर्ण है। मूर्तिपूजा धार्मिक अज्ञानता को बढ़ाती है। भक्त समर्पण भाव से अपनी चेतना मूर्ति को समर्पित कर देता है और उसकी बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। मूर्तिपूजा भगवान को विभाजित करती है और पुजारी के रूप में दलालों को जन्म देती है जो भक्तों से अर्जित धन का उपयोग अनैतिक गतिविधियों के लिए करते हैं।

दृश्य. शिक्षा के बारे में स्वामी जी का मानना था कि उचित शिक्षा के अभाव में किसी भी देश का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। स्वामी जी समाज को सुधारना चाहते थे, एक विद्वान की तरह उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करना उचित समझा। समाज में पाखंड और मूर्तिपूजा जैसी बुराइयाँ थीं, इन सब का कारण अंधविश्वास था, जो अशिक्षा के कारण फैली अज्ञानता के कारण समाज में पनप रहा था। निरक्षरता को समाप्त करने के लिए शिक्षा को बढ़ावा देना आवश्यक है, जिसके माध्यम से हिंदू समाज अज्ञान के अंधकार से छुटकारा पा सकता है। स्वामी जी ने शिक्षा को केवल विद्यालय स्तर तक सीमित नहीं माना, बल्कि उनके अनुसार, शिक्षा शरीर का निर्माण करती है, इंद्रियों को विकसित करती है और बौद्धिक शक्तियों का विकास करती है।

स्वामीजी पश्चिमी शिक्षा और शिक्षा प्रणाली को भारतीयों के लिए खतरनाक मानते थे। उन्होंने सोचा कि गुरुकुल प्रणाली भारतीयों के उत्थान के लिए सबसे अच्छी शिक्षा प्रणाली है और उन्होंने इसका समर्थन और प्रचार किया। गुरुकुल में रहते हुए, छात्र के दो मुख्य कर्तव्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना और पूरी दुनिया का ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिए। स्वामी जी ने अनिवार्य शिक्षा पर जोर दिया है। उन्होंने कहा कि बच्चे के जीवन की शुरुआत में मां का योगदान पांच वर्षों में सबसे बड़ा होता है। माँ को बच्चे को ठीक से उच्चारण करना सिखाना चाहिए, उसके बाद बच्चा उस स्कूल में जाता है जहाँ वह शिक्षा प्राप्त करने के बाद पच्चीस साल की उम्र तक रहता है। स्वामी दयानंद ने जोर देकर कहा कि जब तक हर वर्ग के पुरुष और महिला पूरी तरह से शिक्षित नहीं होते हैं, तब तक देश के लिए कोई भी प्रगति आसान नहीं हो सकती है।[3]

शिक्षा प्रगति की कुंजी है। स्वामी दयानंद सरस्वती अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में थे। दयानंद ने गोद लेने पर जोर दिया

ऐसी शिक्षा प्रणाली जो पूरी तरह से राष्ट्रीय हो और जो ऐसे नागरिकों को उत्पन्न करती हो जो समाज के प्रति कर्तव्य और जिम्मेदारी की भावना रखते हों। स्वामी दयानंद ने महिलाओं की शिक्षा और अधिकारों का पुरजोर समर्थन किया। उस समय समाज में निरक्षरता और अज्ञानता के कारण महिलाओं को पुरुषों और उनके दासों से कमतर माना जाता था। वेदों में स्त्रियों के बारे में कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवताओं का वास होता है और अब वे भारत में स्त्रियों की दर्दनाक दुर्दशा का सामना कर रही थीं। आर्य समाज ने बालिका विद्यालय खोलने और महिला शिक्षा के प्रसार का कार्य शुरू किया, जो आज भी जारी है। आर्य समाज ने समाज में महिलाओं को उचित स्थान देने के उद्देश्य से बाल विवाह और दहेज प्रथा के खिलाफ जोरदार आंदोलन शुरू किया।

वैदिक मूल्यों और आश्रम प्रणाली का समर्थन

प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन का अनुसरण करते हुए, स्वामी दयानंद सरस्वती ने आश्रम प्रणाली का समर्थन किया। इस परंपरा में, एक व्यक्ति की आयु को सौ वर्ष मानते हुए, जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था, ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वनप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम। स्वामी जी के अनुसार, वैदिक आश्रम प्रणाली के पहले दौर में, ब्रह्मचर्य आश्रम में, बच्चों को धार्मिक चरित्र निर्माण करना सिखाया जाएगा और उनका शारीरिक और मानसिक विकास होगा। गृहस्थ आश्रम में वे परिवार में रहेंगे, बच्चे पैदा करेंगे, बच्चों का पालन-पोषण करेंगे और पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरा करेंगे।

वनप्रस्थ आश्रम में सांसारिक सुखों से दूर रहकर व्यक्ति एकाग्र मन से भगवान के नाम का जाप करेगा और ब्रह्म साधना में तल्लीन रहेगा। सन्यास आश्रम में, वह सभी प्रकार के भ्रमों को त्याग देगा और केवल शिक्षा पर आधारित जीवन जीने के लिए सेवानिवृत्त हो जाएगा। यही मोक्ष प्राप्त करने का सच्चा मार्ग है, इसलिए हमें इसे अपने जीवन में अपनाना चाहिए। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार, यदि हम वैदिक मूल्यों और आदर्शों को सामाजिक जीवन का आधार बनाते हैं, तो हम एक सुसंस्कृत और सभ्य समाज का निर्माण कर सकते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनका दृष्टिकोण संकीर्ण और संकीर्ण था। उन्होंने पश्चिमी संस्कृति के गुणों की भी प्रशंसा की, उन्होंने कहा कि हमें पश्चिमी समाज में मौजूद गुणों और अच्छाई को स्वीकार करना चाहिए।[4]

चरित्र निर्माण पर जोर

स्वामीजी अच्छी तरह से जानते थे कि अच्छे चरित्र के बिना एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि उन्होंने नागरिकों के नैतिक चरित्र के उत्थान पर बहुत जोर दिया। स्वामीजी ने नागरिकों के चरित्र निर्माण और उनके नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए आर्य समाज नामक एक संगठन की स्थापना की।

स्वामीजी का विचार था कि किसी व्यक्ति को केवल ब्राह्मण या शूद्र परिवार में पैदा होने के कारण ब्राह्मण या शूद्र नहीं माना जा सकता है। यदि किसी ब्राह्मण का कार्य अनैतिक है और वह बदमाश है तो उसे ब्राह्मण बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। यदि किसी शूद्र की कृतियाँ पर्याप्त रूप से अच्छी हैं और उसे वेदों का ज्ञान है, तो उसकी चरित्र शक्ति अच्छी है, तो वह उच्च पद प्राप्त करने का हकदार होगा। स्वामीजी की राय थी कि केवल भगवा वस्त्र पहनने से कोई संन्यासी या ब्राह्मण नहीं बन सकता

सम्पूर्ण मानव जाति का उदय

स्वामी दयानंद ने अपने सामाजिक विचारों में संपूर्ण मानव जाति के उत्थान पर जोर दिया। वे न केवल एक हिंदू सामाजिक और धार्मिक शिक्षक थे, बल्कि वे एक विश्व गुरु भी थे। उनका लक्ष्य केवल हिंदुओं का ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के लोगों का, यानी मानव जाति का विकास था।

अपने सामाजिक दर्शन में, उन्होंने मनुष्यों के लिए अपनी इच्छाओं के अनुसार विकास करने और संसाधन प्राप्त करने की स्वतंत्रता की अवधारणा की स्थापना की। स्वामी जी की राय थी कि हर व्यक्ति को अपनी तरह सुधार करने और प्रगति करने का पूरा अधिकार है, लेकिन उसे दूसरों को चोट नहीं पहुंचानी चाहिए। सार्वभौमिक कल्याण की अवधारणा उनकी सामाजिक सोच का आधार थी।

शुद्धिकरण आंदोलन पर जोर

मुसलमान शासन के दिनों से ही हिंदुओं का जबरन धर्मांतरण किया जाता था। अंग्रेजों के हाथों सत्ता में आने के बाद, ईसाई पुजारियों ने सहानुभूति और प्रेम दिखाने के साथ प्रलोभन की मदद ली और हिंदुओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना शुरू कर दिया। जातिवाद के अलावा, निचली जातियों के लोग अज्ञानता से उत्पन्न होने वाली कई अन्य गलत प्रथाओं और रूढ़ियों से पीड़ित थे। उन्होंने धर्मांतरण को अपने उद्धार का एक अच्छा तरीका पाया। आर्य धर्म के रक्षक स्वामी दयानंद के लिए इस ओर ध्यान देना स्वाभाविक था। स्वामीजी ने महसूस किया कि पैसे के डर और इच्छा से लाखों हिंदुओं ने इस्लाम या ईसाई धर्म अपना लिया है। इसके कारण जहां हिंदू धर्म में गिरावट आ रही थी, वहीं इस्लाम और ईसाई धर्म का पालन करने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही थी। दोनों धर्मों के प्रचारक हिंदुओं की अज्ञानता का लाभ उठाते थे और उन्हें अपने धर्म में प्रवेश करने के लिए उकसाते थे। जहां स्वामी जी ने शुद्धिकरण आंदोलन के माध्यम से इन दोनों धर्मों के इस अनुचित कार्य का विरोध किया, वहीं उन्होंने हिंदू धर्म छोड़ने वाले लोगों को लाने का काम भी किया। हिंदू समाज में इस संबंध में सबसे खतरनाक बात यह थी कि जहां अन्य धर्मों के अनुयायियों ने अपने समाज में हिंदुओं को खुशी-खुशी स्वीकार किया, वहीं दूसरे धर्म से हिंदू धर्म अपनाने वाले व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानंद ने हिंदू जाति का पुनर्गठन किया और शुद्धिकरण आंदोलन शुरू किया। स्वामी जी ने ऐसे हिंदुओं को शुद्ध किया जिन्होंने वेद मंत्रों और हवन से ईसाई या मुस्लिम धर्म अपना लिया था और हिंदू धर्म की शिक्षा देकर समाज में प्रवेश किया था। स्वामीजी ने शुद्धिकरण आंदोलन को प्राचीन भारत की धार्मिक परंपरा का एक नया रूप बताया।[5]

सामाजिक बुराइयों और अंधविश्वासों का विरोध

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने विचारों में समाज में प्रचलित विभिन्न सामाजिक बुराइयों और अंधविश्वासों का दृढ़ता से खंडन किया। 19वीं शताब्दी में भारत में कई बुराइयाँ और अंधविश्वास थे, जिसके कारण भारतीय समाज पतन की ओर जा रहा था। जहां स्वामी जी ने मूर्ति पूजा का विरोध किया, वहीं उन्होंने जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, बाल विवाह, सती प्रथा, बहुविवाह प्रणाली, बेमेल विवाह, पर्दा प्रणाली आदि का विरोध किया।

जबकि उन्होंने महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया, गोहत्या को अपराध माना और शुद्धिकरण आंदोलन के माध्यम से हिंदू धर्म छोड़ दिया और वैदिक परंपराओं की बहाली का समर्थन किया। इस तरह स्वामी जी ने समाज में मौजूद बुराइयों और अंधविश्वासों पर जोरदार हमला किया।

नैतिक मूल्यों पर आधारित वैदिक सामाजिक प्रणाली की स्थापना

स्वामी दयानंद ने वैदिक नैतिक मूल्यों पर आधारित ऐसी आदर्श सामाजिक प्रणाली की स्थापना का समर्थन किया। उनकी राय थी कि केवल नैतिक मूल्यों पर आधारित व्यक्ति ही एक आदर्श प्रणाली स्थापित कर सकते हैं। इसके लिए उन्होंने वैदिक परंपरा के नियमों पर जोर दिया। वैदिक परंपरा के अनुसार, ब्रह्मचारी जीवन का पालन करते हुए, लोग अच्छे आचरण का पालन करेंगे, वे सत्य, निष्ठा, अहिंसा, इन्द्रिय संयम, शारीरिक और मानसिक शुद्धता, भगवान के प्रति भक्ति का पालन करने की कोशिश करेंगे और शरीर, मन और आत्मा को परिपूर्ण रखेंगे। ऐसा करने से व्यक्ति सामाजिक जीवन में सत्य और न्याय का समर्थन करने और असत्य और अन्याय का विरोध करने में सक्षम होगा।[6]

स्वामी दयानंद के धार्मिक विचार

स्वामी दयानंद सरस्वती मूल रूप से एक धार्मिक विचार थे। स्वामी दयानंद सरस्वती वह भिक्षु थे जिन्होंने धार्मिक प्रथाओं को दरकिनार करते हुए धर्म का एक नया अध्याय लिखा था। एक तपस्वी और महान विचारक के रूप में जाने जाने वाले स्वामीजी ने कर्म, पुनर्जन्म, ब्रह्मचर्य और त्याग के सिद्धांत को अपने दर्शन के चार स्तंभों के रूप में वर्णित किया। आर्य समाज की स्थापना के साथ-साथ स्वामी जी ने भारत की लुप्त वैदिक परंपराओं को फिर से स्थापित करके दुनिया में हिंदू धर्म की स्थापना की। उन्होंने अपने विभिन्न लेखनों और पुस्तकों में जो भी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विचार प्रस्तुत किए, उनका आधार उनकी धार्मिक सोच थी। स्वामीजी के मुख्य धार्मिक विचार इस प्रकार हैं:

वेदों की पुनः स्थापना

स्वामी जी को वेदों में पूरा विश्वास था, वे वेदों को आध्यात्मिक प्रगति का साधन मानते थे। स्वामी जी के अनुसार वेद ही एकमात्र ग्रंथ हैं जिनका ज्ञान ईश्वर द्वारा दिया गया है, अर्थात् वेद दिव्य हैं। यदि भारतीय स्वयं को वेदों के अनुसार संचालित करते हैं, तो उनकी हीनता समाप्त हो सकती है। स्वामी जी के अनुसार, वेद केवल धर्म की बात नहीं करते हैं, उनमें वर्णित वैदिक पद्धति विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक है। इनमें आध्यात्मिक और शारीरिक अध्ययन दोनों विधियाँ मौजूद हैं। स्वामी जी ने हजारों वर्षों के बाद हिंदू समाज के आकर्षण का केंद्र रहे वेदों को न केवल बहाल किया, बल्कि उन्होंने उनकी व्याख्या भी सार्वभौमिक धर्म के अनुसार की। स्वामीजी द्वारा वेदों की पुनः स्थापना को भारतीय इतिहास में एक क्रांतिकारी घटना माना जा सकता है, जिसके बाद हिंदू समाज में एक नई चेतना का संचार हुआ।

ईश्वर, आत्मा और प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास

स्वामी जी ने ईश्वर, आत्मा और प्रकृति के तीन तत्वों को शाश्वत सत्य के रूप में स्वीकार किया था। उनका मानना था कि भगवान पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हैं। भगवान ने ब्रह्मांड का निर्माण किया है, ब्रह्मांड का निर्माण करके, भगवान अपनी प्राकृतिक रचनात्मक शक्ति का उपयोग करते हैं।[7]

धर्म की उदार व्याख्या

स्वामी दयानंद ने अपने धार्मिक विचारों में धर्म को वेद माना है। स्वामी जी के अनुसार, धर्म का एकमात्र आधार सत्य है और वेद भगवान द्वारा रचित है, इसलिए वेद एक सच्चा ग्रंथ है। स्वामी जी के अनुसार, भगवान ने मनुष्य को वेदों में जो कार्य करने का आदेश दिया है, वह धर्म है और जिस कार्य की वेद अनुमति नहीं देते हैं, वह अधर्म है। स्वामी जी ने वेदों को धर्म के आधार के रूप में स्वीकार किया है, फिर भी उनके विचारों में धार्मिक कट्टरता दिखाई नहीं देती है। इसका मुख्य कारण यह था कि स्वामीजी ने वेदों और उन पर आधारित धर्म को तार्किक और परिपक्व तरीके से समझाया।[8]

सार्वभौमिक धर्म का समर्थन

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने धार्मिक विचारों में वैश्विक धर्म का समर्थन किया है। उन्होंने हिंदू धर्म में आई बुराइयों को दूर करने के लिए किसी अन्य नए धर्म की नींव नहीं रखी। उन्होंने मानव जाति के कल्याण के लिए एक सार्वभौमिक धर्म के विचार को प्रोत्साहित किया। उनका सार्वभौमिक धर्म एक ऐसा धर्म था जो तीनों अवधियों में समान रूप से स्वीकार्य था। जो सच्चा था और बिना किसी भेदभाव के और परोपकार के कारण सभी द्वारा स्वीकार किया गया था और जिसमें नैतिकता के पालन पर जोर दिया गया था।

एकेश्वरवाद में विश्वास

स्वामी जी ने अपने धार्मिक विचारों के तहत एकेश्वरवाद पर विशेष जोर दिया है। दयानंद सरस्वती बहुदेववाद के बजाय एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे, उनका मानना था कि भले ही भगवान के नाम अनंत हैं लेकिन भगवान सार में एक हैं। उनका मानना था कि पवित्र जीवन जीने से ईश्वर में पूर्ण विश्वास पैदा किया जा सकता है। स्वामी जी के अनुसार इस संसार के तीन तत्व ईश्वर, आत्मा और प्रकृति हैं, ये तीन शाश्वत और अनंत हैं, ये तीन सत्य हैं, वे हर समय में मौजूद हैं। वे भगवान को हिंदुओं के कई देवी-देवताओं के भक्ति मार्ग के व्यक्तिगत रूप के रूप में नहीं मानते थे। ब्रह्मा के रूप में भगवान के कई नाम हैं, जिनमें ओम सबसे अच्छा है, वह अमर है। स्वामीजी को एकेश्वरवाद में पूर्ण विश्वास था।

आर्य समाज की स्थापना

स्वामी दयानंद वेद शास्त्रों के एक महान विद्वान, समाज सुधारक और आर्य समाज के प्रवर्तक के रूप में विश्व प्रसिद्ध हैं। स्वामी जी एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो सच्चे धर्म का प्रचार कर सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने आर्य समाज की नींव रखी। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य सच्चे ज्ञान का प्रसार करना था। आम जनता के बीच वेदों की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए वैदिक संहिता का हिंदी में अनुवाद किया। आर्य समाज ने सभी वर्गों में शिक्षा के कार्य का प्रसार किया। आर्य समाज शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी था और इसका व्यापक शैक्षिक कार्य राष्ट्रीय जीवन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान था।[9]

सत्यार्थ प्रकाश का सृजन

आर्य समाज की स्थापना के बाद, स्वामीजी ने कई धर्मों के धार्मिक ग्रंथों और शिक्षाओं का अध्ययन करने के बाद सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित कराया। सत्य को स्वीकार करना और असत्य का त्याग करना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य था। वेदों के अध्ययन के बिना सच्चा ज्ञान संभव नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश में जीवन से संबंधित बुनियादी दार्शनिक सिद्धांतों को इतने सरल तरीके से समझाया गया है कि एक साधारण शिक्षित व्यक्ति भी पढ़कर दार्शनिक बन सकता है। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश को सभी धर्मों का सार बताया[10]

मूर्तिपूजा का विरोध

स्वामी जी ने मूर्तिपूजा का पुरजोर विरोध किया, वे मूर्ति पूजा को वेदों के खिलाफ मानते थे। स्वामी दयानंद सरस्वती वेदों और वेदों में विश्वास करते थे, मूर्ति पूजा से अधिक श्रद्धा को महत्व दिया गया है, इसलिए दयानंद सरस्वती मूर्ति पूजा के खिलाफ थे, उनका मानना था कि मूर्ति पूजा एक धार्मिक कार्य नहीं है, बल्कि यह एक अंधविश्वास है। अपनी धार्मिक यात्राओं के दौरान, स्वामीजी ने शास्त्रों में मूर्तिपूजा के समर्थकों को हराया और वह पुजारी गंगा में मूर्तियों को प्रवाहित करके स्वामीजी के शिष्य बन गए। स्वामीजी का विचार था कि मूर्तिपूजा धार्मिक अज्ञानता को बढ़ाती है। यह भगवान और भक्तों के बीच पुजारियों के रूप में बिचौलियों को जन्म देता है जो भक्तों से अर्जित धन का उपयोग अनैतिक गतिविधियों में करते हैं। स्वामी दयानंद की राय थी कि मूर्तियों के सामने सिर झुकाने के बजाय हमें अपने माता-पिता, शिक्षकों और मेहमानों का सिर झुकाकर सम्मान करना चाहिए।

वैदिक अध्ययन में महिलाओं और दलितों का समावेश

स्वामी दयानंद सरस्वती का मानना था कि वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा गया है कि महिलाएं और शूद्र वैदिक की पूजा या अध्ययन नहीं कर सकते हैं। इसलिए, महिलाओं और शूद्रों को भी वैदिक अध्ययन करने का उतना ही अधिकार है जितना कि पुजारी वर्ग को।

दृश्य. धर्म और राजनीति के बारे में

स्वामीजी मानते थे कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनका विचार था कि धर्म के बिना सच्ची राजनीति नहीं हो सकती और धर्म के बिना राजनीति राज्य की आत्मा को मारने वाले जहर की तरह है। स्वामी जी की राय थी कि जो विचारक यह विचार प्रस्तुत कर रहे हैं कि धर्म और राजनीति दो अलग-अलग विषय हैं, तो वे राज्य को धोखा दे रहे हैं। वे राज्य पर धर्म के नियंत्रण को स्वीकार करते हैं, वे राजनीति को धर्म के अधीन मानते हैं। स्वामीजी का मानना था कि राजनीति में धर्म और आध्यात्मिकता का प्रवेश इसे पवित्र बनाता है। भगवान से डरते हुए, एक धार्मिक व्यक्ति ऐसा कोई काम नहीं करता जो राजनीति की छवि को धूमिल करे। स्वामी दयानंद ने पश्चिम के उस विचार की आलोचना की जो राजनीति और धर्म या नैतिकता को अलग करता है।[11]

स्वामी दयानंद के उपरोक्त सामाजिक और धार्मिक दर्शन का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी जी न केवल एक समाज सुधारक थे, वे न केवल एक धार्मिक विचारक थे, बल्कि उनका राजनीतिक दृष्टिकोण भी बहुत व्यापक था। वे ईश्वर की शाश्वत शक्ति के समर्थक थे। स्वामी दयानंद ने भारत के अधीनता की राजनीतिक स्थिति को तुरंत महसूस किया। विदेशी शासन समाप्त होना चाहिए और भारत में स्वशासन स्थापित होना चाहिए। यह आवाज सबसे पहले स्वामी दयानंद ने उठाई थी। उन्होंने इस सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया कि सुशासन कभी भी स्वशासन की जगह नहीं ले सकता है। स्वामी दयानंद सरस्वती का भारतीय इतिहास में अमूल्य योगदान है, क्योंकि जहां उन्होंने दूसरे देश में मौजूद धार्मिक बुराइयों की आलोचना करके समाज को संगठित करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने विदेशी धर्मों या पश्चिमी सांस्कृतिक प्रभाव से अपनी संस्कृति की रक्षा की और भारत में राष्ट्रवाद की भावना का विकास किया। स्वामीजी ने अस्पृश्यता का विरोध किया और इसे वेदों के खिलाफ करार दिया। वेदों में अपनी आस्था के कारण, उन्होंने वेदों की ओर लौटने का नारा दिया। स्वामीजी ने वैदिक अध्ययन में महिलाओं और दलितों को शामिल किया है। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार, केवल शिक्षा ही मनुष्य और समाज का उत्थान कर सकती है। उन्होंने कहा कि शिक्षा सभी वर्गों के लिए अनिवार्य होनी चाहिए और सभी लोगों को शिक्षित करना राज्य का कर्तव्य होगा।[12]

निष्कर्ष

स्वामी दयानंद ने जाति व्यवस्था का कड़ा विरोध किया और मूर्ति पूजा का भी विरोध किया। स्वामी दयानंद संपूर्ण मानव जाति का उत्थान चाहते थे, इसलिए उन्होंने शुद्धिकरण आंदोलन पर जोर दिया। उन्होंने चरित्र निर्माण पर जोर दिया और वैदिक आश्रम प्रणाली का समर्थन किया। स्वामी दयानंद ने सच्चाई और निर्भीकता पर जोर दिया और सामाजिक बुराइयों और अंधविश्वासों का विरोध किया। उन्हें वेदों में पूर्ण विश्वास था और उन्होंने ईश्वर, आत्मा और प्रकृति के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया। स्वामी दयानंद एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे।

स्वामी दयानंद ने धर्म की उदार व्याख्या की और सार्वभौमिक धर्म का समर्थन किया। स्वामीजी ने हिंदू धर्म सहित सभी धर्मों में प्रचलित अवतार की अवधारणा का दृढ़ता से खंडन किया है। स्वामी जी ने वैदिक ज्ञान के प्रचार के उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना की और सत्यार्थ प्रकाश की महान कृति का प्रकाशन भी करवाया। स्वामी जी ने अपने विचारों को ठोस आकार देने के लिए आर्य समाज की स्थापना की और प्राचीन आश्रम प्रणाली को पूरा समर्थन दिया।

संदर्भ

1. अनीश, भारतीय पुनर्जागरण और स्वामी दयानंद सरस्वती, अनुशीलन, जनवरी, 2016
2. रामकृष्ण शर्मा, ए स्टडी ऑफ द एजुकेशनल एंड फिलोसोफिकल थॉट्स ऑफ स्वामी दयानंद सरस्वती, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वॉल्यूम-10,7 जुलाई, 2022
3. V.K. पुरी भारतीय राजनीतिक चिंतक, आधुनिक प्रकाशक, जालंधर, 2016
4. लाल बहादुर सिंह चौहान, स्वामी दयानंद सरस्वती जीवन और दर्शन, सावित्री प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
5. मधुर अथैया, स्वामी दयानंद सरस्वती, प्रभात प्रकाशन, जयपुर, 2017
6. J.C. जोशी, आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती की वैचारिक सोच, इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च, वॉल्यूम-8, जून-2019
7. मधु चोपड़ा, भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में आर्य समाज का योगदान, सत्यम पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2006
8. एस. एल. नागोरी, भारत में राष्ट्रवाद का विकास, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 1994
9. O.P. गौबा भारतीय राजनीतिक विचार, राष्ट्रीय पेपरबैक, नई दिल्ली, 2021
10. S.R. मिनेनी, भारतीय राजनीतिक विचार, इलाहाबाद विधि एजेंसी, 2016
11. हरिद्वार शुक्ला, भारतीय राजनीतिक विचार, महावीर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
12. उर्मिला शर्मा, S.K. शर्मा, भारतीय राजनीतिक विचार, अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2022